

---

 विक्रम संवत्-२०३५, श्रावण शुक्ल - ८, बुधवार, तारीख १८-८-१९८०

वचनामृत-१९७

प्रवचन-११

---

वचनामृत, १९७। प्रज्ञाछैनी को... प्रथम बात सुनो। शुभ और आत्मा की शुद्धता को भिन्न करने की कला है। इसके बिना सब व्यर्थ है। अन्तर में प्रज्ञाछैनी को शुभाशुभभाव... शुभाशुभभाव और ज्ञान की सूक्ष्म अन्तःसन्धि... सूक्ष्म भाव और ज्ञान की-आत्मा की अन्तर सन्धि। दो के बीच दरार है। दो के बीच तड़ है हमारी गुजराती भाषा में तड़ कहते हैं। अन्दर सन्धि है। ज्ञान की सूक्ष्म अन्तःसन्धि में पटकना। जहाँ सन्धि है, वहाँ प्रज्ञाछैनी को पटकना। कहाँ? कि शुभाशुभभाव और ज्ञान की सूक्ष्म अन्तःसन्धि में... आहाहा! मूल रकम की बात है। इसके बिना, बिना अंक के शून्य है। मुख्य अन्तर प्रज्ञाछैनी से (द्वारा) भिन्न हुए बिना सब अनन्त बार किया। अनन्त बार नौवीं ग्रैवेयक गया। जो चीज अन्तर में से होनी चाहिए वह हुई नहीं।

बहिन यहाँ वह कहती है। शुभाशुभभाव और ज्ञान की सूक्ष्म अन्तःसन्धि... सूक्ष्म अन्तःसन्धि। धैर्य से अन्तर दो बीच की सन्धि में, धैर्य से दो बीच के दरार में पटकना। अरे..रे..! यह तो भाषा है, भाई! भाव तो अपना करना है या नहीं? भाषा तो भाषा (है), भाषा में क्या? शुभाशुभभाव और ज्ञान-भगवान, दो के बीच की सन्धि, दो के बीच सूक्ष्म सन्धि है, सूक्ष्म एकता है नहीं, अन्दर दोनों भिन्न है। आहाहा! उसमें पटकना। आहाहा!

उपयोग को बराबर सूक्ष्म करके... शुद्ध उपयोग। शुभाशुभभाव से तो रहित। शुद्ध उपयोग प्रथम सम्यग्दर्शन पाने को सूक्ष्म शुद्ध उपयोग को बराबर सूक्ष्म करके अर्थात् शुद्ध करके। उन दोनों की सन्धि में... राग का विकल्प और ज्ञान की सन्धि के बीच में सावधान होकर... आहा! भाषा तो सादी है, भाव तो अपूर्व है, प्रभु! अन्दर में धीरज से, सावधानी से, शान्ति से राग के विकल्प की जाति की दिशा पर की ओर है और ज्ञान की दिशा स्व की ओर है, ऐसे दो के बीच सन्धि है, उसमें वहाँ ज्ञान की एकाग्रता सूक्ष्म उपयोग करके भिन्न करना। पटकना अर्थात् दो को भिन्न करना। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! पहली यह

तो शुरुआत की बात है। सम्यग्दर्शन होने के काल में ऐसी स्थिति होती है। इसके बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। सम्यग्दर्शन बिना जो कुछ होता है, वह संसार है। आहाहा!

**उपयोग को बराबर सूक्ष्म करके...** कोई ऐसा पूछता था, सूक्ष्म कैसे करना? प्रभु! सूक्ष्म उसको कहते हैं कि पर ओर का झुकाव छूटकर, स्व की ओर का झुकाव जो होता है, उसको सूक्ष्म उपयोग कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म उपयोग (करके) **सावधान होकर उसका प्रहार करना**। दोनों की सन्धि में। आहाहा! अनन्त-अनन्त काल में प्रभु चौरासी के अनन्त अवतार किये। साधुपना भी अनन्त बार लिया, दिगम्बर मुनि अनन्त बार हुआ, लेकिन आत्मज्ञान बिना कुछ हुआ नहीं। भव कम हुए नहीं; अनन्त भव रहे।

लिंगपाहुड में तो प्रभु ऐसा कहते हैं कि इतनी बार द्रव्यलिंग धारण किया, धारण करने के बाद कोई एक कण बाकी नहीं कि जिसमें अनन्त भव नहीं किये हो। ढाई द्वीप आदि में कोई कण बाकी नहीं है कि द्रव्यलिंग धारण करने के बाद अनन्त भव नहीं किये हों। आहाहा! ऐसा लिंगपाहुड में कुन्दकुन्दाचार्य महाराज कहते हैं। लिंग तो अनन्त बार धारण किया, नग्न हुआ, महाव्रत धारण किया, वह सब तो पर—जड़ की चीज़ है। आहा..!

अन्तर में उसका प्रहार करना, सावधान होकर बराबर सूक्ष्म उपयोग करके। आहाहा! **सावधान होकर अर्थात् बराबर सूक्ष्म उपयोग करके, बराबर लक्षण द्वारा पहिचानकर**। अन्दर लक्षण द्वारा अर्थात् राग है, वह आकुलता है और प्रभु है, वह अनाकुल आनन्द है। वह ज्ञान, दर्शन और आनन्द है। ऐसा दो का लक्षण सूक्ष्मपने सावधान होकर जानकर दो बीच में एकत्व की सन्धि तोड़ना। आहाहा! शब्द तो प्रभु! थोड़े हैं। यह तो बहिन ने कहते समय बोल दिया है। नहीं तो उनको तो कुछ पड़ी नहीं। बहिन तो अतीन्द्रिय आनन्द में रमते हैं। आहा..! अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में उनको किसी की पड़ी नहीं है। ये किसी ने लिख लिया, इसलिए बाहर आया। नहीं तो आता नहीं। आहाहा! पाँच पंक्ति में कितना है! पाँच लाईन में।

**सूक्ष्म उपयोग करके, बराबर लक्षण द्वारा पहिचानकर**। लक्षण द्वारा। आत्मा का आनन्द और ज्ञान लक्षण है और राग का दुःख और आकुलता लक्षण है, ऐसा दो बीच में

लक्षण को पहिचानकर, सावधान होकर, धीरज से दो के बीच की एकता तोड़ दे। एकता तो है नहीं, है तो भिन्न ही है, फिर भी भिन्न में एकता मानी है। मानी है, उसे तोड़ना है। प्रभु तो त्रिकाली निरावरण (है)। तीनों काल परमात्मा स्वयं स्वरूप है, वह तो निरावरण है। चैतन्यबिम्ब परमात्मा त्रिकाल निरावरण, सर्वांग निरावरण (है)। वह आया है। जयसेनाचार्य की (३२० गाथा समयसार की) टीका में। आहाहा! प्रभु तो सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर सूक्ष्म पारिणामिक परमभावलक्षण, ऐसा एक परमद्रव्य, उसमें एकाग्र हो जा। आहाहा! यह शब्द वहाँ के है। टीका के, संस्कृत टीका के हैं। आहाहा! वह कहते हैं। अब दृष्टान्त देते हैं।

**अभ्रक के पर्त कितने पतले होते हैं,...** अभ्र। अभ्रक कहते हैं न? अभ्रक नहीं कहते? बहुत पतले पर्ते, बहुत पतले पर्ते। एक को निकालने जाए तो दूसरे का टुकड़ा हो जाए। बहुत पतले। आहाहा! **अभ्रक के पर्त कितने पतले होते हैं,...** आहाहा! अभ्रक के पर्ते, पर्ते अर्थात् पत्ता, कितना पतला सूक्ष्म होता है। **किन्तु उन्हें बराबर सावधानीपूर्वक...** धीरे से, धीरज से **अलग किया जाता है,...** आहाहा! पत्ता तो ऐसा लगे कि मानो एक छूटे तो एकसाथ सब (छूट जाएँगे)। इतने पतले हैं। अभ्रक। हमारे वहाँ था। व्यापार में। व्यापार में हमारे पास आता था। सब व्यापार किया है न। सब चीज़ रखते थे। बदाम, चारोंजी, पिस्ता (आदि सब)। यह अलग चीज़ है। अभ्रक के पर्ते भिन्न करने में... आहाहा!

**उसी प्रकार सूक्ष्म उपयोग करके स्वभाव-विभाव के बीच...** जैसे पर्ते को भिन्न करने में धीरज और सावधानी होनी चाहिए। **उसी प्रकार सूक्ष्म उपयोग करके स्वभाव-विभाव के बीच...** स्वभाव और विभाव के बीच। भगवान आनन्दस्वरूप परमात्मा त्रिकाल आनन्द में विराजता है। राग का अंश उसमें है नहीं। और राग का अंश है, वह दुःखरूप है और यह आनन्द है। आनन्द और दुःख को बराबर स्वभाव-विभाव के बीच। विभाव दुःखरूप है, स्वभाव आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द की शान्तिरूप है। आहाहा! एक अंश का स्वाद-आत्मा का आनन्द का एक अंश का स्वाद, इन्द्र का इन्द्रासन उसके सामने कुछ गिनती में नहीं आता। ऐसी चमत्कारिक चीज़ प्रभु है। आहाहा! ऐसा आत्मा अन्तर अपना अतीन्द्रिय आनन्द का दल, अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड और राग आकुलता का

सागर, आकुलता का प्रवाह है वह तो। आहाहा! क्योंकि यह नित्य वस्तु है और राग तो पलटता है। प्रवाह है, प्रवाह। आकुलता का प्रवाह है। भगवान आनन्द का धाम; प्रवाह नहीं, आनन्द का धाम है। आहाहा!

**स्वभाव-विभाव के बीच प्रज्ञा द्वारा भेद कर। प्रज्ञा द्वारा भेद कर।** कोई क्रियाकाण्ड से भेद होता नहीं। आहाहा! जैन दिगम्बर साधु नौवीं ग्रैवेयक गया। उसकी क्रिया सुनो तो.. ओहो...! शरीर जीर्ण हो गया, बहुत क्रिया की। उसमें क्या हुआ? भगवान आत्मा आनन्द का सागर भरा है। उसका पता न ले। वह सागर की खान है, उसका पता न ले, तब तक सब व्यर्थ है। आहाहा! व्यवहारवाले को कठिन लगे। व्यवहार है। हो, सब व्यवहार तो है ही। परन्तु व्यवहार से आत्मा में जाता नहीं। आहाहा! वह कहते हैं।

**प्रज्ञा द्वारा भेद कर। जिस क्षण विभावभाव वर्तता है, उसी समय...** जिस क्षण, जिस काल अन्तर में पर ओर का झुकाववाला राग वर्तता है, **उसी समय ज्ञातृत्वधारा द्वारा स्वभाव को भिन्न जान ले।** उसी समय ज्ञातृत्वधारा द्वारा। आहाहा! मूल बात कही है, प्रभु! आहाहा! जिस क्षण विभावभाव वर्तता है, उसी समय ज्ञातृत्वधारा... अन्दर पड़ी है। आहाहा! ज्ञातृत्वधारा द्वारा स्वभाव को भिन्न जान ले। ज्ञातृत्वधारा द्वारा। क्या कहते हैं? राग की धारा तो क्षण-क्षण में पलटती है। और यह तो ज्ञानपिण्ड, आनन्दपिण्ड पलटता नहीं। वैसा का वैसा आनन्द रहता है। ध्रुव, ध्रुव पिण्ड रहता है। आहाहा! चैतन्य का आनन्द का पिण्ड-दल पलटे बिना ध्रुव सत् दल, सत्त्व रहता है। उसके द्वारा **स्वभाव को भिन्न जान ले।** आहाहा! बात तो मुद्दे की आयी है।

व्यवहार है भिन्न। भगवान से भिन्न है। व्यवहार द्वारा भिन्न नहीं होगा। आहाहा! चाहे जैसा व्यवहार हो, शुभभाव चाहे जितना हो, नौवीं ग्रैवेयक गया, शुभभाव शुक्ललेश्या से। शुक्ललेश्या से गया। शुक्ललेश्या तो छठे देवलोक से शुक्ललेश्या होती है। छठे स्वर्ग में अनन्त बार गया। सातवें में, आठवें में अनन्त बार और नौवें में भी अनन्त बार गया। वह शुक्ललेश्या से गया है। शुक्ललेश्या। शुक्लध्यान अलग और शुक्ललेश्या अलग। शुक्ललेश्या तो अभवी को भी होती है। और शुक्लध्यान, ध्यान में आठवें गुणस्थान से होता है। शुक्ललेश्या और शुक्लध्यान, दो में इतना अन्तर है। आहाहा!

**स्वभाव को भिन्न जान ले। भिन्न ही है... है ? भिन्न जान ले, ऐसा कहा। फिर कहा,**

भिन्न हुआ। भिन्न था ही तो भिन्न हुआ है। भिन्न हुआ तो भिन्न था ही, वह भिन्न हुआ है। आहाहा! गजब है! प्रभु! ऐसी बात तो गजब, नाथ! तेरी शक्ति, तेरा बल, तेरी विचक्षणता, तेरी अचिंत्य धारा...! आहाहा! अलौकिक बात है। दुनिया में मान मिले, बड़ी सभा हो, लोग इकट्ठे हो, ... उसमें कोई माल नहीं है। देह छूटने पर वह कोई साथ नहीं आता। समाधि-अन्दर शान्ति प्रगट की होगी, वह शान्ति साथ में आयेगी। आहाहा! राग से भिन्न शान्ति और आनन्द यदि प्रगट किया होगा, वह साथ में आयेगा। दुनिया की प्रशंसा, इज्जत और कीर्ति वहाँ कुछ काम नहीं आयेगा।

इसलिए कहते हैं कि भिन्न कर। क्यों? कि भिन्न ही है। भाषा अलग है। आहाहा! भिन्न जान ले। ज्ञातृत्वधारा द्वारा स्वभाव को भिन्न जान ले। भिन्न जाना तो उसका अर्थ कि भिन्न ही था, भिन्न ही है। राग और ज्ञानधारा कभी एक हुई नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात आयी। आहाहा! ...सूक्ष्म कर, भिन्न कर। भिन्न कर। कारण? भिन्न ही है। भिन्न कर। (कि) कारण भिन्न ही है। आहाहा! सादी भाषा, साधारण चार पुस्तक पढ़ा हो, उसे भी ख्याल में आये। यहाँ कोई अंग्रेजी विशेष पढ़ा हो तो ही ख्याल में आये, ऐसा नहीं है। आहाहा!

भिन्न ही है परन्तु तुझे नहीं भासता। तेरी दृष्टि में द्रव्य की ओर का झुकाव नहीं है और अन्तर में गहराई में राग की सूक्ष्मता की ओर झुकाव के कारण, सूक्ष्म राग में भी झुकाव के कारण तुझे लगता है कि तुझे कुछ राग घट गया। घटा नहीं है। आहाहा! परन्तु तुझे नहीं भासता। विभाव और ज्ञायक हैं तो भिन्न-भिन्न ही;... भगवान आत्मा ज्ञायक ध्रुव चैतन्यप्रभु और विकल्प-राग, दोनों भिन्न-भिन्न ही है। भिन्न-भिन्न ही। विभाव और ज्ञायक हैं तो भिन्न-भिन्न ही;... दोनों है तो भिन्न-भिन्न ही। आहाहा! ऐसी बात सूक्ष्म लगे न। लोगों को स्थूल बात का उपदेश देकर, लोग प्रसन्न हो। और सेठ लोगों को फुरसत नहीं मिलती। फिर ऐसी बात सुनकर... जिन्दगी पूरी कर दे। पन्नालालजी! यह तो दृष्टान्त है। आहाहा!

यह चीज़... आहाहा! महाभाग्य कि ऐसी वाणी सुनने मिले। अन्तर में काम करना तो उसका काम है। वहाँ कोई वाणी काम करेगी नहीं। वाणी सुनी और धारण की, धारणा की, उससे कोई काम होगा नहीं। आहाहा! वाणी सुनने मिली और उसका ख्याल आया तो उस ख्याल से भिन्न नहीं पड़ेगा। वह ख्याल तो पराधीन दशा है। आहाहा! कहाँ ले जाना

है ? प्रभु ! कहते हैं कि तेरी चीज़ को सूक्ष्म कहते हैं । तुझे सुनने मिलता है तो कान को भी छूती नहीं, परन्तु तेरे ज्ञान की पर्याय उस समय की ऐसी योग्यता क्रमबद्ध में आनेवाली है तो आयी । परन्तु उससे धारणा हुई । उससे भिन्न हुआ नहीं । आहाहा ! समझ में आया ?

**जैसे पाषाण और सोना एकमेक दिखने पर भी...** गिरनार में पत्थर और सोना बहुत है । परन्तु उतना अधिक सोना नहीं है । सौ रुपये का खर्च करे तब चालीस-पचास का सोना निकले । गिरनार । गिरनार पर्वत में सोना की गाँठ बहुत है । और सोने का कारखाना भी किया था । सोना निकालने के लिये । परन्तु सौ रुपये का खर्च और चालीस-पचास का सोना निकले । कारखाना बन्द कर दिया । आहाहा !

यहाँ कहते हैं, भगवान ! **पाषाण और सोना एकमेक दिखने पर भी भिन्न ही हैं...** पत्थर और सोना एक नहीं हुए । **तदनुसार** । ज्ञायक और विभाव दोनों भिन्न ही हैं । एक कभी हुए नहीं । तेरी मान्यता ने माना है । आहाहा ! सूक्ष्मपने अन्तर में जाना और राग से भिन्न होकर, भिन्न चीज़ पड़ी है, उसको पकड़ने के लिये, प्रभु ! तूने सावधानी कभी की नहीं । आहाहा ! इसलिए उसे दुष्कर लगता है । बाकी वस्तु तो सहज है । सहज वस्तु ही वह है । सच्चिदानन्द प्रभु आनन्द का कन्द अन्दर विराजता है । आहा.. ! **भिन्न ही हैं तदनुसार** । पत्थर और सोना जैसे भिन्न है तदनुसार । विभाव और ज्ञातृधारा बिल्कुल भिन्न है । ज्ञातृधारा सोना समान है, राग पत्थर समान है । आहाहा ! बहुत अच्छी बात आयी है । वस्तु तो यह है । प्रथम में प्रथम कर्तव्य यह है । स्थिरता बाद में होगी । जो चीज़ देखी नहीं, वेदन में आयी नहीं, उसमें स्थिरता कहाँ से आयेगी ? स्थिरता अर्थात् चारित्र । जो चीज़ दृष्टि में आयी नहीं, ज्ञान में ज्ञेय—भास हुआ नहीं, उसका वेदन हुआ नहीं, तो स्थिरता कहाँ से होगी ? उसके बिना स्थिरता बाहर की होगी । शुभराग की मन्दता आदि बहुत किया । मान ले कि हम कुछ तो करते हैं । आहाहा !

**प्रश्न :** सोना और पत्थर का दृष्टान्त दिया, इसलिए प्रश्न करते हैं । **सोना तो चमकता है, इसलिए पत्थर और सोना—दोनों भिन्न ज्ञात होते हैं,...** आहाहा ! परन्तु यह कैसे भिन्न ज्ञात हों ? पत्थर और सोना तो भिन्न चमकते हैं । सोना तो चमकता है तो भिन्न कर सकते हैं । **परन्तु यह कैसे भिन्न ज्ञात हों ?** आत्मा और राग, कैसे भिन्न हो ? उसमें तो चमकता है, इसलिए चमक पर से भिन्न किया । सोना चमकता है, इसलिए पत्थर

चमकता नहीं, इतना लक्षण देखकर सोने को भिन्न कर दिया। प्रभु! आत्मा को कैसे भिन्न करना ?

**उत्तर :- यह ज्ञान भी चमकता ही है न ?** प्रभु! आहाहा! जैसे सोना चमकता है और उससे तुझे भिन्न भासता है। **यह ज्ञान भी चमकता ही है न ?** चमकता ही है न। है। आहाहा! भगवान आत्मा शरीर में अन्दर भिन्न ज्ञान चमकता है। आहाहा! **विभावभाव नहीं चमकते...** जैसे पत्थर नहीं चमकता, सोना चमकता है तो भिन्न करके निकाल दिया। वैसे यहाँ ज्ञान भी चमकता ही है न। आहाहा! ज्ञान चमकता है। जानन.. जानन.. जानन... जानन... इस स्वभाव के अस्तित्व से आत्मा तो ज्ञान के अस्तित्व से, ज्ञान से चमकता ही है। आहाहा! विभाव नहीं चमकते। राग का विकल्प है, उसमें चमक नहीं है। चमक नहीं है अर्थात् उसमें ज्ञान नहीं है। राग कुछ जानता नहीं, वह तो जड़ है। जाननेवाला चमकता है। ज्ञान से आत्मा भगवान चमकता है। आहाहा!

**किन्तु सर्वत्र ज्ञान ही चमकता है...** आहाहा! विभाव नहीं चमकते। आहा..! पुण्य और पाप, दया, दान, व्रतादि के विकल्प चमकते नहीं। वह तो अजीव है, जड़ है। उसमें चैतन्यपना है नहीं। आहाहा! **किन्तु सर्वत्र ज्ञान ही चमकता है...** तूने ध्यान दिया नहीं। अन्दर में तो ज्ञान ही चमकता है, राग नहीं चमकता है। आहाहा! **किन्तु सर्वत्र ज्ञान ही चमकता है—ज्ञात ही होता है।** क्या कहा ? **ज्ञान की चमक चारों ओर फैल रही है।** आहाहा! ज्ञान की चमक चारों ओर फैल रही है। सबको जानना, अपने को जानना, ऐसा ज्ञान चमक रहा है। समझ में आया ? **सर्वत्र ज्ञान ही चमकता है—ज्ञात होता है।** जानने में ज्ञान ही चमकता है। प्रभु! थोड़ी दृष्टि दे तो राग चमकता नहीं। राग तो अन्धा है। जड़ है, अजीव है। ज्ञान भगवान राग से भिन्न चमकता ही है और भिन्न रहकर चमकता है। आहाहा! भाषा बहुत थोड़ी है। माल है। **ज्ञान की चमक चारों ओर फैल रही है।**

**ज्ञान की चमक बिना...** अब दृष्टान्त के साथ मिलान करते हैं। **ज्ञान की चमक बिना सोने की चमक काहे में ज्ञात होगी ?** क्या कहते हैं ? ज्ञान की चमक बिना सोने की चमक काहे में ज्ञात होगी ? किसमें ख्याल आयेगा ? सोने की चमक भी ज्ञान में ख्याल में आयी है। आहाहा! बहुत सरस बात है। मुद्दे की बात यह है। करने की चीज़ प्रभु! मनुष्यदेह मिला, नाथ! उसमें करना यह है। इज्जत और दुनिया, सब एक ओर रख दे।

करने की तो यह एक चीज़ है। दुनिया माने, न माने, उसके साथ तेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। यहाँ तो कहते हैं, राग के काल में भी ज्ञान की ही चमक है। राग तो जानता नहीं। जानता तो ज्ञान है। राग के काल में भी ज्ञान की ही चमक है। सोना की चमक ज्ञान जानता है। पत्थर को खबर है? सोने की चमक ज्ञान जानता है। वैसे अपनी चमक स्वयं जानता है। उसमें कोई राग या विकल्प की जरूरत नहीं है। आहाहा! **ज्ञान की चमक बिना सोने की चमक काहे में ज्ञात होगी?** आहाहा! प्रभु! तूने विचार नहीं किया है। चमक के अन्दर ज्ञान चमकता है। उसमें सब भासता है। चमक तो ज्ञान की है। उसके सिवा दूसरी कोई चमक नहीं है। दूसरी कोई चीज़ जानती नहीं। सोने का भान भी ज्ञान में हुआ न? यह सोने की चमक है, ऐसा ज्ञान में जानने में आया न? तो ज्ञान ने प्रसिद्ध किया। आहाहा!

**जैसे सच्चे मोती और खोटे मोती इकट्ठे हों...** अब दूसरा दृष्टान्त (देते हैं)। पहला पत्थर और सोने का दिया। दूसरा दृष्टान्त। **जैसे सच्चे मोती और खोटे मोती इकट्ठे हों तो मोती का पारखी...** यह शर्त है। सच्चे-खोटे मोती पड़े हैं परन्तु मोती का पारखी-यह शर्त है। पारखी नहीं हो तो सब इकट्ठा ले ले। आहाहा! मोती का पारख जिसको है, आहाहा! **उसमें से सच्चे मोतियों को अलग कर लेता है...** मोती का पारखी। शर्त यहाँ है। सच्चे मोती का जिसको ख्याल है, सच्चे मोती का जिसको ज्ञान है, वह सच्चे मोती ले लेगा। सच्चे मोती और झूठे, दोनों एकसाथ में हैं, परन्तु सच्चे मोती का जिसको ख्याल है, वह ख्यालवाला सच्चे मोती को उठा लेगा। आहाहा!

**सच्चे मोती और खोटे मोती इकट्ठे हों तो मोती का पारखी...** वजन यहाँ है। सच्चे मोती की कीमत जिसको है। हीरा होता है न? हीरे की इतनी छोटी कणी होती है, हजारों रुपया। बताने आये न। एक बार देखा था। अस्सी हजार का। एक हीरा अस्सी हजार का। राजकोट चातुर्मास था। नानालालभाई के भाई बेचरभाई थे। एक बार लाये थे, बताया था। एक हीरा। परन्तु वह तो बड़ा हीरा था। अस्सी हजार का। ये तो छोटे-छोटे चमकते (हैं)। बहिन को वधायेंगे न। छोटे-छोटे चमकते हैं। पाँच-पाँच हजार के हीरे। पाँच-पाँच हजार के, छह-छह हजार के, पन्द्रह हजार के, दस हजार के। बारीक-बारीक कणी। उसकी चमक की परीक्षा जिसे हो, वह उठा लेगा। उसकी परीक्षा जिसको है, वह ले लेगा। दूसरा तो काँच के टुकड़े में हीरा मानेगा। आहाहा!

पहले ऐसा था, सोनी की दुकान के पास आता था। धूलधोया। देखा है, हमने प्रत्यक्ष देखा है। सोनी की दुकान में करते थे। मैं खड़ा था। अस्सी साल पहले की बात है। उसमें तीन प्रकार के टुकड़े दिखे। एक दिखे सोने का बारीक टुकड़ा, एक दिखे पीतल की छोटी कणी और एक दिखे कंगन। कंगन होते हैं न? काँच के कंगन में पीला रंग होता है न? उसकी कणी होती है। तीनों कण को पहचान लेता है। काँच की कणी हल्की होती है, पीतल की कणी भी तौलदार नहीं होती और सोने की कणी तौलदार होती है। आहाहा! करते थे, पहले। सोनी की दुकान में एक साल, दो साल होने के बाद थोड़ा-थोड़ा पड़ा होता है।

यहाँ भगवान की दुकान के पास बड़े-बड़े भगवान विराजते हैं, ऐसा कहते हैं। तुझे परखना नहीं आता। भगवान विराजता है, अकेली ज्ञान की चमक से अन्दर। ज्ञान की चमक से अकेला परमात्मा विराजता है। राग को भी जाननेवाला है कौन? दया, दान का विकल्प है उसको जाननेवाला है कौन? जाननेवाले में वह नहीं है। दया, दान का परिणाम जाननेवाले में नहीं है। जाननेवाले में नहीं और दया, दान के परिणाम में जाननेवाला नहीं है। आहाहा! दोनों भिन्न हैं। परन्तु जिसको परीक्षा है, ख्याल है, सच्चे-झूठे मोती का, वह मोती ले लेता है।

**पारखी उसमें से सच्चे मोतियों को अलग कर लेता है,...** वजन यहाँ है। ख्याल भी नहीं और अन्धा होकर चलता है। अनादि काल से अन्धा चल रहा है। **सच्चे मोतियों को अलग कर लेता है, उसी प्रकार आत्मा को 'प्रज्ञा से ग्रहण करना'।** चमक से ग्रहण करना। ज्ञान की चमक। राग की चमक नहीं है। ऐसी सूक्ष्मता से अन्दर में जाकर ज्ञान की चमकता से ज्ञान को पकड़ लेना। **उसी प्रकार आत्मा को 'प्रज्ञा से ग्रहण करना'।** आहाहा! विधि तो अलौकिक कही है। यह बहिन के शब्द हैं। अनुभव में से आये हैं। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव (है)। अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव की दशा में से यह वाणी आयी है। आहाहा! उसमें यह बात निकल गई और बाहर आ गयी।

**'प्रज्ञा से ग्रहण करना'। जो जाननेवाला है, सो मैं;...** अन्दर जो जाननेवाला है, वह मैं। जिसमें जानने में आये, राग-द्वेष, विभाव जानने में आये, जो चीज जानने में आयी वह मैं नहीं, परन्तु जाननेवाला मैं हूँ। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की बात बहुत बदल गई।

बाहर की बात इतनी हो गई कि उसी में चढ़ गये। मूल सम्यग्दर्शन और ज्ञान पहले प्रगट करने की चीज़ है। वहाँ प्रयत्न करना और दूसरा प्रयत्न छोड़ देना। आहाहा! आत्मा को 'प्रज्ञा से ग्रहण करना'। जो जाननेवाला है, सो मैं; जो देखनेवाला है, सो मैं... आहाहा! इस प्रकार उपयोग सूक्ष्म करके... इस प्रकार उपयोग को सूक्ष्म करके। जिसमें राग को जाननेवाला भिन्न पड़ जाए और भिन्न है ही। ऐसे सूक्ष्म उपयोग को पकड़ ले। आहाहा!

उपयोग सूक्ष्म करके आत्मा को और विभाव को पृथक् किया जा सकता है। आत्मा को और राग को सूक्ष्म अन्तर ज्ञान में पृथक् किया जा सकता है। आहाहा! यह पृथक् करने का कार्य प्रज्ञा से ही होता है। यह पृथक् करने का कार्य प्रज्ञा से ही होता है। एकान्त किया। कोई व्यवहार क्रियाकाण्ड करने से, दया, दान या व्रत करने से (नहीं होता)। व्यवहार है सही, परन्तु उससे यह पकड़ में आता है, ऐसा है नहीं। आहाहा!

**मुमुक्षु :-** प्रज्ञा माने क्या ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :-** प्रज्ञा अर्थात् ज्ञान। प्रज्ञा। प्र-विशेषरूप से, ज्ञ। जो खास भिन्न जाननेवाला प्रज्ञा। प्र-विशेषरूप से, ज्ञ-जाननेवाला। पर की अपेक्षा रखे बिना। अपनी चमक में-अपनी प्रज्ञा से राग से भिन्न करना। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यहाँ तो उपदेश दूसरे प्रकार से चलता हो। स्थूल हो तो लोगों को ठीक लगे। ऐसा करो, वैसा करो, ऐसा करो, मन्दिर बनाना, गिरनार की यात्रा करनी, शिखरजी की यात्रा करनी। आहा..! प्रभु! मार्ग बहुत सूक्ष्म है। वह सूक्ष्म मार्ग पकड़े बिना जन्म-मरण का अन्त आता नहीं, प्रभु! और जन्म-मरण का अन्त हुए बिना, प्रभु! क्या किया? आहाहा! अवतार तो एक नहीं, ऐसे अनन्त-अनन्त अवतार (किये)। आहा..! नरक की वेदना.. आहाहा! याद करते-करते आचार्य कहते हैं, घाव लगता है। पूर्व की वेदना स्मरण करते हैं, स्मरण में लेते हैं तो हमको घाव लगता है। वादिराज कहते हैं। कभी विचार भी कहाँ किया है कि नरक में कितना दुःख है। आहा..!

आत्मा को और विभाव को पृथक् किया जा सकता है। यह पृथक् करने का कार्य प्रज्ञा से ही होता है। व्रत, तप या त्यागादि भले हों,... उससे वह पृथक् नहीं हो सकता। आहाहा! परन्तु वे साधन नहीं होते,... राग की मन्दता की क्रिया, व्रत, तप आदि,

त्यागादि साधन नहीं होते,... कठिन पड़े जगत को। एक तो निश्चय से ऐसी बात है कि आत्मा के सिवा परवस्तु का त्याग-ग्रहण मिथ्यात्व है। पर का त्याग और ग्रहण मानना, वह मिथ्यात्व है। क्योंकि आत्मा में त्याग-उपादान नाम की शक्ति-त्यागग्रहण करना, लेने की रहित शक्ति त्रिकाल पड़ी है। आत्मा में वह शक्ति त्रिकाल पड़ी है। पर का त्याग और ग्रहण आत्मा में है ही नहीं। त्याग-उपादानशून्यत्व शक्ति। ४७ शक्ति में १६वीं है। आहाहा! उस ओर तो ध्यान नहीं (और) बाहर के त्यागादि ऊपर पूरा वजन जाता है। उससे कोई ख्याल में नहीं आता। आहा..! वह कोई साधन नहीं है।

साधन तो प्रज्ञा ही है। आहाहा! प्रज्ञा अर्थात् ज्ञान की छैनी। राग और ज्ञान के बीच सन्धि है, दरार है, उसमें पटक। तेरी चीज़ भिन्न हो जाएगी। भिन्न ही है। भिन्न ही है। भिन्न हो जाएगी। यदि भिन्न न हो तो भिन्न होती नहीं। आहाहा! राग से यदि एकमेक हो, स्वरूप चैतन्य राग से एकमेक हो तो राग से कभी छूटे नहीं। सोना और सोने का पीलापन एकमेक है। कभी छूटेगा? वैसे भगवान आत्मा प्रज्ञा और आत्मा, ये दोनों एक ही है। उससे कभी छूटता नहीं। प्रज्ञा से ही राग से भिन्न होगा। दूसरी कोई क्रिया है नहीं। आहाहा! ये तो बहिन रात को किसी समय बोले होंगे, उसे लिख लिया और बाहर आ गया। आहाहा! अभी नहीं आते। (स्वास्थ्य) नरम है।

स्वभाव की महिमा से परपदार्थों के प्रति रसबुद्धि—सुखबुद्धि टूट जाती है। कोई क्रियाकाण्ड से नहीं। स्वभाव की महिमा से। भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द जिसका त्रिकाली स्वभाव है। जैसे उष्णता अग्नि का त्रिकाली स्वभाव है, ऐसे ज्ञान और आत्मा का त्रिकाली स्वभाव है। इस स्वभाव की महिमा से परपदार्थों के प्रति रसबुद्धि—सुखबुद्धि टूट जाती है। कुछ भी अधिक-ठीक लगे कि इसमें से कुछ मिलेगा, प्रज्ञाछैनी से वह सब छूट जाता है। कुछ राग की मन्दता की क्रिया करता हो, करते-करते कुछ लाभ होगा। आहाहा! वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! यहाँ तो स्वभाव की महिमा से परपदार्थों के प्रति... व्यवहाररत्नत्रय के प्रति की रसबुद्धि—सुखबुद्धि टूट जाती है। आहाहा!

स्वभाव में ही रस आता है,... आहाहा! स्वभाव। स्व-भाव। चैतन्य का स्व भाव। वह स्वभाव ज्ञान और आनन्द (है)। आहाहा! उसका स्वरूप-भगवान आत्मा का स्व रूप। स्व अपना रूप ज्ञान और आनन्द। आहाहा! अपने रूप में... आहा..! रस आता है।

स्वभाव में ही रस आता है,... आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय के राग में भी दुःख लगता है। ज्ञानी को उसमें दुःख का रस लगता है और स्वभाव में ही रस लगता है। दूसरा सब नीरस लगता है। भगवान आत्मा के आनन्द के सिवा... सिवाय कहते हैं। अलावा। सब रस टूट जाता है और दूसरा सब नीरस लगता है। कहीं रस नहीं लगता। शुभभाव में भी रस लगता नहीं। आहा..!

तभी अन्तर की सूक्ष्म सन्धि ज्ञात होती है। स्वभाव में रस आता है, दूसरा सब नीरस लगता है तभी, तब अन्तर की सूक्ष्म सन्धि-अन्तर की सूक्ष्म सांध। राग का विकल्प और स्वभाव, दोनों भिन्न हैं, ऐसी सूक्ष्म सन्धि तभी अन्तर में ज्ञात होती है। स्व का रस आता है और पर का रस टूट जाता है। ऐसा नहीं होता कि पर में तीव्र रुचि हो... अन्दर में रुचि राग में, पुण्य में, सूक्ष्म शुभ में भी रुचि रहे और उपयोग अन्तर में प्रज्ञाछैनी का कार्य करे। ऐसा बनता नहीं। आहाहा!

( श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव! )